इकाई 20 न्याय

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 परिचय
20.2 न्याय का अर्थ
20.2.1 न्याय और कानून
20.2.2 न्याय और भेदभाव
20.3 वितरणकारी न्याय
20.3.1 आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना
20.4 सामाजिक न्याय
20.4.1 सामुदायिक हित का प्राबल्य
20.4.2 सुधार अथवा सामाजिक परिवर्तन
20.4.3 सामाजिक न्याय संबंधी पाउण्ड का चित्रण
20.4.4 सामाजिक न्याय संबंधी आलोचना
20.5 प्रक्रियात्मक न्याय
20.6 जॉन रॉल्स का न्याय–सिद्धांत
20.7 न्याय : संयोजन का एक शब्द
20.8 सारांश
20.9 कुछ उपयोगी संदर्भ
20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम करेंगे आमतौर पर राजनीति–विज्ञान और खासतौर पर राजनीति–सिद्धांत में सबसे बुनियादी और महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं में से एक पर चर्चा। यह इकाई पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- न्याय–संबंधी संकल्पना के अर्थ को स्पष्ट कर सकें
- न्याय के विभिन्न पहलुओं के बीच अंतर कर सकें
- न्याय की प्रकृति संबंधी विभिन्न सिद्धांतों की पहचान और व्याख्या कर सकें, और
- स्वतंत्रता, समानता, कानून व न्याय के बीच संबंध स्पष्ट कर सकें।

20.1 परिचय

अब तक आप सभी कानून, अधिकार, स्वतंत्रता एवं समानता जैसी संकल्पनाओं के विषय में जान चुके होंगे। इन संकल्पनाओं का एक पूर्व–अध्ययन न्याय की अवधारणा को समझने में मदद करेगा। न्याय का मूल सिद्धांत वस्तुतः उपरोक्त विषयों से जुड़ा है।

इस इकाई में हम इस अवधारणा का अर्थ उसके पहलुओं में समझने का प्रयास करेंगे। तदोपरांत, हम न्याय संबंधी विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे। हम एक ओर न्याय और दूसरी ओर कानून, स्वतत्रंता व समानता के बीच संबंध पर भी प्रकाश डालेंगे।

न्याय राज्य के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में एक है। राजनीति विषयक प्राचीनतम समझौतों में एक समझौता, प्लैटो का 'रिपब्लिक', न्यायसंगत राज्य के निर्माण हेतु एक प्रयास था। न्याय इसकी केन्द्रीय अवधारणा थी। इसी कारण, इस अवधारणा की एक सही समझ विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों, उनकी नीतियों व उन विचारधाराओं जिन पर वे आधारित हैं, के मूल्यांकन में मदद करेगी। इस प्रकार, न्याय ही राजनीतिक मूल्यों का समन्वयक एवं संयोजक है तथा, जैसा कि अरस्तू ने कहा, यह 'वो है जो तमाम भलाई के लिए ज़िम्मेदार' है।

20.2 न्याय का अर्थ

न्याय की अवधारणा संबंधी किसी भी चर्चा में उसके बहु–आयामी स्वभाव का ध्यान रखना पड़ता है। 'न्याय क्या है' का जवाब सिर्फ़ उन मापदण्डों (मूल्यों) का संकेत करके ही दिया जा सकता है, जिनके सहारे मनुष्य ने न्याय के बारे में सोचा और सोचता रहेगा। यह वक्त गुज़रने के साथ ही बदल जाता है। इस प्रकार, अतीत में जो न्याय था, वर्तमान में अन्याय हो सकता है तथा वर्तमान में जो न्याय है, अतीत में अन्याय रहा हो सकता है। तदनुसार, न्याय का समतावादी बोध रहा है जिसमें उच्चतम स्थान समानता के मूल्य को दिया जाता है, 'इच्छास्वातंत्र्यवादी' बोध रहा है जिसमें स्वतंत्रता ही परम मूल्य होता है; 'क्रांतिकारी' दृष्टिकोण जिसमें न्याय का मतलब है कायापलट कर देना; 'दैवी' दृष्टिकोण जिसमें ईश्वर की इच्छा का निष्पादन ही न्याय है; 'सुखवादी' न्याय की कसौटी 'अधिकतम संख्या का अधिकतम लाभ' को बनाता है; 'समन्वयक' के लिए न्याय पर्याप्त संतुलन लाने हेतु विभिन्न मूल सिद्धांतों व मूल्य का समन्वय करना है। कुछ लोग न्याय को 'कर्त्तव्य' अथवा शान्ति व व्यवस्था कायम रखने के साथ पहचानते हैं; दूसरे, इसे एक अभिजात–वर्गवादी कार्य के रूप में देखते हैं; इस प्रकार, न्याय व्यक्ति के अधिकार के साथ–साथ समाज की सार्वजनिक शांति से भी संबंध रखता है।

20.2.1 न्याय और कानून

रोम के अधिवक्ताओं ने 'प्राकृत न्याय' संबंधी विचारों को राज्य के सकारी कानून के साथ जोड़ा। जैसे कि नागरिक कानून एवं राष्ट्रिक कानून प्राकृत कानून के साथ मेल खाते हैं। यह वैसे न्यायशास्त्र की एक दुर्बोध अवस्था है। वस्तुतः, न्याय सकारी कानून को लागू किए जाने में निहित होता है। कानून व न्याय दोनों ही सामाजिक व्यवस्था कायम रखने का प्रयास करते हैं। जॉन ऑस्टिन इस बात के मुख्य समर्थक हैं, जो बतलाते हैं कि कानून को एक ओर न्याय के साधन रूप में और दूसरी ओर अनिष्ट को रोकने के साधन रूप में काम करना पड़ता है।

वैध रूप से, न्याय–व्यवस्था को अन्यायपूर्ण कहकर आलोचना की जा सकती है, यदि वह कानून–व्यवस्था की प्रक्रियाओं द्वारा वांछित निष्पक्षता के मानक तक पहुँचने में असमर्थ रहती है, यथा अभियुक्त अपने विरुद्ध लगाये गए आरोपों से अवगत होना चाहिए; उसे अपने बचाव के लिए एक सकारण अवसर दिया जाना चाहिए आदि, जबकि नैतिक रूप से, किसी कानून को अनुचित कहा जा सकता है यदि वह न्याय–संबंधी नैतिक विचारों से मेल न खाता हो। नैतिकता, बहरहाल, न्याय से अधिक महत्त्व रखती है।

न्याय के प्रतीक को प्रायः आँखें बंद किए हुए के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, क्योंकि उसको निष्पक्ष माना जाता है। ताकि दो सिरों – धनवान वा ग़रीब, उच्च अथवा निम्न के बीच, कोई भेदभाव न रहे। इसी कारण, निष्पक्षता न्याय की एक पूर्वशर्त बन जाती है। तो फिर क्या इसका मतलब, न्याय को पक्षपात की कतई ज़रूरत नहीं पड़ती?

20.2.2 न्याय और भेदभाव

प्लैटो और अरस्तू ने न्याय की एक भिन्न व्याख्या हेतु तर्क दिया – ''न्याय–निष्ठता'' के विचार सहित ''आनुपातिक समानता''। न्याय की सैद्धांतिक व्याख्या अरस्तू के पास पहुँचकर एक आनुभविक दिशा पकड़ लेती है जो कहते हैं : ''जब समानों से असमान रूप से व्यवहार किया जाता है, तो अन्याय उत्पन्न होता है।'' इसका मतलब कि यदि किसी लोकतंत्र में लिंग के आधार पर भेदभाव होता हो तो इसका अर्थ समानों के साथ असमान रूप से व्यवहार करना है। इसी तरह, एक 80–किग्रा. (heavy-weight) पहलवान को एक 60–किग्रा. (light-weight) पहलवान के सामने लड़ने के लिए प्रस्तुत करना भी अनुचित होगा। इस प्रकार, न्याय अपेक्षा करता है कि भिन्नताओं के आधार पर भेदभाव हो, जो कि निष्पादित कार्यों के लिए प्रासंगिक है। प्लैटो के न्याय–संबंधी सिद्धांत का निहितार्थ था कि लोगों का जीवन कार्यात्मक विशेषज्ञता नियम के अनुरूप होना चाहिए। यहाँ न्याय 'सही स्थान' सिद्धांत का दूसरा नाम हो जाता है, यथा किसी आदमी को बस उसी काम का ही अभ्यास करना चाहिए जिसके प्रति उसका स्वभाव सर्वाधिक अनुकूल है। इसके वैयक्तिक व सामाजिक दोनों ही पहलू होते हैं। व्यक्ति व समाज, दोनों की ही सबसे ज़्यादा भलाई इसी में रहेगी यदि हम यह सत्य मान लें कि किसी व्यक्ति के लिए इससे अच्छी बात नहीं होगी कि वह ऐसा काम करे, जिसके लिए वह सर्वाधिक उपयुक्त हो। ठीक इसी प्रकार, समाज के लिए इससे बेहतर कोई बात नहीं होगी कि यह देखे कि हर व्यक्ति उसी स्थान को ही भरे जिसके लिए वह अपने व्यक्तित्व की विशेषता के आधार सर्वाधिक योग्य हो। इसके लिए व्यक्ति व राज्य के लिए बुद्धि, शक्ति व प्रवृत्ति संबंधी तीन मूल तत्त्वों पर ज़ोर दिया गया है, ताकि वे उनको उचित मर्यादा में रखें।

साथ ही, सामान्यतः कानून निजी कानून जीवन में विभेदकारी व्यवहार की घटनाओं में भी हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु इससे यदि सामाजिक हानि पहुँचती हो, तो राज्य का इसमें हस्तक्षेप करना न्यायसंगत होगा, जैसे अस्पृश्यता की घटनाओं में, जहाँ कुछ समुदायों को मानवाधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इसी कारण, इसके विरुद्ध कोई भी कानून न्यायसंगत होगा। इसी तरह, अलग से दी गई सुविधाएँ वस्तुतः समान नहीं हो सकतीं। यही कारण है कि डॉ॰ अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों के लिए मंदिरों में प्रवेश के अधिकार की माँग की और उनके लिए पृथक् मंदिरों, विद्यालयों अथवा छात्रावासों का विरोध किया।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) न्याय क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) न्याय की अवधारणा में भेदीकरण कैसे समाविष्ट होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.3 वितरणकारी न्याय

अरस्तू की धारणा उसकी सिद्धांत नींव रखने वाली सिद्ध हुई, जिसको 'वितरणकारी न्याय' कहा जाता है। अरस्तू की व्याख्या का महत्त्वपूर्ण निहितार्थ यह है कि न्याय या तो 'वितरणात्मक' होता है अथवा 'दोषनिवारक'; पूर्ववर्ती अपेक्षा करता है कि समानों के बीच समान वितरण हो और परवर्ती वहाँ लागू होता है, जहाँ किसी अन्याय का प्रतिकार किया जाता है।

वह सिद्धांत जो मार्क्स ने क्रांति–पश्चात् साम्यवादी समाज में वितरणकारी न्याय हेतु प्रस्तुत किया, वो है – 'हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार, हर एक को उसके काम के अनुसार'। वितरणकारी न्याय का विचार कुछ हाल के राजनीतिक अर्थशास्त्रियों की पुस्तकों में प्रकट होता है। इस संदर्भ में, जे.डब्ल्यु. चैपमैन की पुस्तक प्रशंसनीय है, जो 'मनुष्य की आर्थिक तर्कशक्ति' संबंधी अपने सिद्धांतों को 'नैतिक स्वतंत्रता' संबंधी व्यक्तिगत दावे से जुड़ी 'उपभोक्ता की संप्रभुता' से जोड़ने का प्रयास करते हैं। उनके अनुसार, न्याय का प्रथम सिद्धांत उन लाभों का वितरण होना प्रतीत होता है, जो उपभोक्ताओं के सिद्धांतों के अनुसार लाभ–वृद्धि करते हों। दूसरा सिद्धांत यह है कि ऐसी व्यवस्था अन्यायपूर्ण होती है, यदि मात्र कुछ लोगों के भौतिक कल्याण को अनेक लोगों की कीमत पर खरीद लिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि न्याय यह अपेक्षा करता है कि कोई भी व्यक्ति दूसरे की कीमत पर लाभ प्राप्त न करे।

20.3.1 आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना

वितरणकारी न्याय आम कल्याण की शर्त के अधीन है। वह चाहता है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को इस प्रकार सुधारा जाए कि लाभ आम आदमी तक पहुँच सकें। इस तरीके से आर्थिक न्याय की धारणा का अर्थ होगा समाज का एक साम्यवादी प्रतिमान।

आर्थिक न्याय का पहला काम है, हर सक्षम–देही नागरिक को रोज़गार, खाद्य, आश्रय व वस्त्रादि मुहैया कराना। सभी की प्राथमिक व मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के इस क्षेत्र के संबंध में यह ठीक ही कहा गया है कि स्वतंत्रता अर्थहीन है, यदि वह आर्थिक न्याय दिलाने में रुकावट डालती है। तदनुसार, उदारवादीजन यह मानते हैं कि आर्थिक न्याय समाज में हासिल किया जा सकता है, यदि राज्य कल्याणकारी सेवा प्रदान करता हो और वहाँ कराधान की सुधारवादी व्यवस्था हो; सामाजिक सुरक्षा वाले रोज़गार प्रबन्ध हेतु अच्छी आमदनी हो, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, आनुतोषिक एवं भविष्य निधि।

तथापि, न्याय–संबंधी मार्क्स के विचार का मूल अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ही है। मार्क्स के अनुसार, राज्य का सकारी कानून उस वर्ग–विशेष के प्राधिकार द्वारा ही अपने सदस्यों पर

थोपा जाता है, जो उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करता है। कानून शासक वर्ग के आर्थिक हित द्वारा तय किया जाता है। जब निजी सम्पत्ति को समाप्त कर दिया जाता है और कामगार वर्ग उत्पादन–साधनों पर नियंत्रण कर लेता है, तो ये कानून कामगार वर्ग के हित को सोचने–विचारने के लिए बाध्य होते हैं। इसी कारण, न्याय की विषयवस्तु उत्पादन–साधनों पर नियंत्रण रखने वाले वर्ग पर निर्भर करती है। जब राज्य का क्षय हो जाएगा, जैसा कि साम्यवादी जन इरादा रखते हैं, तो यहाँ आर्थिक मूल के बग़ैर न्याय व्याप्त हो जाएगा।

आधुनिक उदारवादी जन काफ़ी लम्बे समय से आर्थिक अहस्तक्षेप संबंधी आम सिद्धांत को छोड़ चुके हैं। पुनर्वितरणकारी न्याय (जिसकी अरस्तू ने बात की) 'संशोधन उदारवाद' का एक अभिन्न हिस्सा है, जिसका कि जे.डब्ल्यु. चैपमैन, जॉन राल्स, व अर्थर ओकुन ने समर्थन किया। इन लेखकों ने सभी के लिए न्याय व स्वतंत्रता के हितार्थ अर्थव्यवस्था में राज्यीय हस्तक्षेप के अपने आशय के साथ ''पुनर्वितरणकारी न्याय'' की वकालत की।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) वितरणकारी न्याय से आप क्या समझते हैं? यह आर्थिक न्याय से कैसे संबंधित है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.4 सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय विद्यमान कानूनों के तहत किसी व्यक्ति की न्यायसंगत अपेक्षाओं की पूर्ति सुनिश्चित करते हुए उस व्यक्ति के अधिकार व सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन से ताल्लुक रखता है और उसे लाभों व उसके अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण से बचाव की गारण्टी देता है। चलिए, न्याय के निम्नलिखित पहलुओं के लिहाज से 'सामाजिक न्याय' शब्दपद पर सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं, यथा एक, सामुदायिक हित के प्राबल्य की धारणा और दो, 'सुधार' अथवा सामाजिक परिवर्तन की धारणा।

20.4.1 सामुदायिक हित का प्राबल्य

बाज़ार आदि मामलों में अहस्तक्षेप सिद्धांत के ह्रास के साथ ही एक नई जानकारी विकसित हुई कि किसी व्यक्ति के अधिकार समुदाय–विशेष के हित में युक्तिसंगत रूप से सीमाबद्ध होने चाहिए, ताकि सामाजिक न्याय का उद्देश्य वैयक्तिक अधिकारों व सामुदायिक हित के बीच सामंजस्य की अपेक्षा रखे। वह यह भी मानकर चलता है कि इन दोनों के बीच किसी विवाद की दिशा में, सामुदायिक हित वैयक्तिक विषयों से अवश्य ही ऊपर रहना चाहिए। सामाजिक न्याय, तदनुसार, उस धारणा से गहरे जुड़ा हुआ है जिसमें आम भलाई अथवा

सामुदायिक हित शामिल है। आज सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में लोकतंत्र के प्रवेश के साथ ही, सामुदायिक हित के दायरे में न सिर्फ़ राजनीतिक (राजनीतिक मामलों में उचित व्यवहार) बल्कि सामाजिक (सामाजिक क्षेत्रों में अभेदभाव) व आर्थिक (आय व सम्पत्ति का उचित वितरण) क्षेत्र भी आने लगे हैं। इस प्रकार, सामाजिक न्याय की शृंखला अल्पसंख्यक राजनीतिक अधिकारों की रक्षा से लेकर अस्पृश्यता निवारण एवं ग़रीबी उन्मूलन तक फैली है। जैसे कि, विश्व के पिछड़े देशों में, सामाजिक न्याय संबंधी धारणा राज्य को आदेश देती है कि वह समुदाय के पददलित एवं कमज़ोर वर्गों की उन्नति के लिए ठोस प्रयास करे।

20.4.2 सुधार अथवा सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक न्याय को आजकल निष्पक्षता व समानता संबंधी धारणाओं के आधार पर समाज के संगठन को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह सामाजिक व्यवस्था पर विचारकर उसे बदलने का प्रयास करता है, ताकि एक अधिक साम्यिक समाज बन सके। मनुष्य युगों से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तनों का प्रयास करता रहा है, ठीक उतना ही जितना कि वह एक प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था को बचाये रखने का प्रयास करता रहा है। सामाजिक न्याय का अर्थ है – सुधारवादी न्याय, सामाजिक व्यवस्था पर विचारकर उसे बदलना और निष्पक्षता संबंधी सामयिक विचारों से मेल खाते अधिकारों का पुनर्वितरण। जब अरस्तू ने 'वितरणकारी न्याय' की बात की थी, तो वह सुधारवादी, अथवा जिसे राफ़ेल ''कृत्रिम अंगी'' कहते हैं, न्याय की बात दिमाग़ में रखते थे, क्योंकि इसका उद्देश्य यथास्थिति में किंचित् हेर–फेर करना था।

कोई सौ वर्ष पहले, न्याय सरकार से यह अपेक्षा नहीं रखता था कि बेरोज़गारों का ध्यान रखे। इस काम की अपेक्षा दातव्य (charity) संस्थान से की जाती थी। ''सुधारवादी'' अथवा ''कृत्रिम अंगी'' न्याय संबंधी विचारों की युक्ति से आज यह राज्य का कर्त्तव्य है कि बेरोज़गारों का ध्यान रखे और उन्हें रोज़गार मुहैया कराये।

20.4.3 सामाजिक न्याय संबंधी पाउण्ड का चित्रण

सामाजिक न्याय संबंधी धारणा की अभिपुष्टि डीन रौस्को पाउण्ड की व्याख्या में बहुत अच्छी तरह की गई है, जो सामाजिक हित का छह–सतही चित्रण प्रस्तुत करते हैं और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए आठ कानूनी यानी अधिकार व कर्त्तव्य संबंधी अभिधारणाएँ सामने रखते हैं। तदनुसार, सामाजिक न्याय संबंधी धारणा एक न्याय–संगत सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित कर लोगों के कल्याण को प्रोत्साहन देने की परिकल्पना करती है।

सामाजिक न्याय

सामाजिक हित	कानूनी अभिधारणाएँ
1. आम सुरक्षा, जैसे – शान्ति, जन–स्वास्थ्य, उपार्जनों की सुरक्षा, आदि में	1. दूसरों द्वारा कोई मनमानी आक्रामकता न दर्शायी जाए
2. सुरक्षा व सामाजिक व्यवस्थाओं, जैसे– विवाह, धार्मिक संस्थाओं, आदि में	2. वे पक्षधर जिनसे लेनदेन किया जाता है, सच्ची निष्ठा से काम करेंगे
3. सामान्य सदाचार, जैसे – द्युतक्रीड़ा, मद्य–सेवन, अनैतिक व्यापार, आदि में	3. किसी को अपने उपार्जनों एवं रचनाओं के उपभोग में कोई अड़चन नहीं आयेगी

4. सामाजिक संसाधनों, जैसे – खाद्य, खनिजों, आदि को बचाने में	4. किसी व्यक्ति को अनुचित जोखिम में नहीं डाला जाएगा और दूसरे लोग उचित ध्यान व होशियारी से काम करेंगे
5. व्यापक प्रगति, जैसे – व्यापार संबंधी स्वतंत्रता, अनुसंधान को प्रोत्साहन, आदि में	5. दूसरों द्वारा रखी जाने वाली ख़तरनाक वस्तुओं को अपनी सीमाओं में सावधानी एवं ध्यानपूर्वक रखा जाएगा
6. वैयक्तिक अधिकारों, जैसे – वेतन, कार्य–दशाओं आदि में	6. कर्मचारी को रोज़गार का अधिकार है
	7. समाज उन विपत्तियों में साथ देगा जो किसी व्यक्ति पर आ पड़ें
	8. एक औद्योगिक समाज में अपरिहार्य मानव व्यवहारजनित क्षय हेतु कर्मचारियों को उचित हर्जाना दिया जाएगा

20.4.4 सामाजिक न्याय संबंधी आलोचना

सामाजिक न्याय संबंधी सिद्धांतों की तीन आधारों पर आलोचना की जाती है। प्रथम, सामाजिक न्याय हेतु माँगें, उलझाव में डालकर, राज्य के क्रियाकलापों में इज़ाफा कर देती हैं। राज्य को तब तय करना पड़ेगा कि ''कौन क्या, कब और कैसे प्राप्त करे''। जहाँ राज्य के अधिकारीगण निहित स्वार्थों को प्रकट करते हों, ऐसा काल्पनिक संकल्प सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने वाला नहीं है। दूसरे, सामाजिक न्याय संबंधी नीतियों एवं उनको लागू किए जाने में आज़ादी की काट–छाँट किए जाने की आवश्यकता पड़ती है। कितने महत्त्वपूर्ण/कितने साधारण सामाजिक न्याय के लिए कितनी आज़ादी कुर्बान की जाये – यह एक मुश्किल से ही सुलझाई जा सकने वाली समस्या बन जाती है। अन्ततः, यह निर्धारित करना मुश्किल होता है कि ऐसी बुनियादी आवश्यकताएँ कौन–सी हैं, जिनका सामाजिक न्याय के मापदण्डों को पूरा करने हेतु निवारण किया जाना है और कौन–सी समानता को छोड़ देना उचित ठहराती हैं।

तथापि, जब भारतीय संविधान विधानमंडल, शैक्षणिक संस्थाओं एवं सार्वजनिक रोज़गार में स्थानों के आरक्षण की घोषणा करता है, तो वह समानता से दूर जाना आवश्यक बना देता है। न्याय के संबंध में इन नीतियों के लिए अनेक कारण बताए जाते हैं। प्रथमतः यह कि ऐसा बर्ताव वंचनाओं से भरे सौ सालों की क्षतिपूर्ति कर देता है, दूसरे यह कि ये उपाय वंचितों को समाज के साथ ही समान दृढ़स्थिति में लाने के लिए मूलभूत समानता का अनुभव कराने हेतु आवश्यक हैं और तीसरे, यह कि न्याय केवल तभी किया जा सकता है जबकि राज्य उनका सामाजिक सम्मान, आर्थिक जीवनक्षमता एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा दिलाने में मदद करने रियायती नीतियाँ लेकर आगे आये।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।
ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) सामाजिक न्याय क्या है? इसकी किन आधारों पर आलोचना की गई है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.5 प्रक्रियात्मक न्याय

न्याय संबंधी एक अपेक्षाकृत अधिक अनुदार दृष्टिकोण वह है, जिसे 'प्रक्रियात्मक न्याय' कहा जाता है। इस अर्थ में यह शब्द धन–दौलत व लाभों के पुनर्वितरण की प्रयोग–विधि ा बतलाने में इतना इस्तेमाल नहीं होता, जितना कि वैयक्तिक कार्यों हेतु व्यवहृत नियमों व प्रक्रियाओं के लिए। अनिवार्यतः वह मानवीय कार्यों में मनमानेपन को दूर करने व कानून के शासक का समर्थन करने का प्रयास करता है। इस अवधारणा में व्यष्टियाँ होती हैं, न कि समष्टियाँ। इस दृष्टिकोण से, नियमों व प्रक्रियाओं का साथ न देते हुए, लाइन तोड़कर आगे पहुँचना अथवा प्रतिस्पर्धा में कुछ प्रतिभागियों को अनुचित लाभ देना अन्याय कहलायेगा। प्रक्रियात्मक सिद्धांतियों (उदाहरणतः हयेक) का मानना है कि सम्पत्ति के पुनर्वितरण हेतु मापदण्डों को थोपना सर्व–सत्तावाद और आज़ादी की एक नाज़ायज कुर्बानी की ओर प्रवृत्त करेगा। इसमें राज्य द्वारा निरन्तर हस्तक्षेप शामिल है, ताकि समानता द्वारा अपेक्षित प्रतिमान कायम रहे। उन्हें लगता है कि यदि राज्य किसी कल्याणकारी नीति को अपना भी लेता है, तो उसका न्याय से कम ही सरोकार होता है।

प्रक्रियात्मक सिद्धांत के समालोचकों का तर्क है कि महज नियमों का पालन मात्र ही कोई उचित परिणाम सुनिश्चित नहीं कर देता। किसी सामाजिक प्रसंग में बनाये गए नियम कुछ ही समुदायों के पक्ष में विचारे जाते हैं। इसी कारण, एक स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा हमेशा एक निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकती। दूसरे, मुक्त–बाज़ार सम्बंध उन व्यक्तियों के लिए समान रूप से दमनकारी हो सकते हैं, जिनके पास आर्थिक शक्ति का अभाव है; उनके लिए एक मुक्त बाज़ार की आज़ादी अर्थहीन होगी।

20.6 जॉन रॉल्स का न्याय–सिद्धांत

विभिन्न राजनीतिक सिद्धांत 'एक वास्तविक रूप से न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था क्या होगी' संबंधी विभिन्न चित्र प्रस्तुत करते हैं। इनमें से दो सिद्धांत हैं – उपयोगितावादी सिद्धांत, और निष्पक्षता के रूप में न्याय संबंधी रॉल्स का सिद्धांत। उपयोगितावादी सिद्धांत का दावा है कि वह सामाजिक व्यवस्था जिसमें बड़ी से बड़ी संख्या में लोग अपनी उपयोगिता की उच्चतम संतुष्टि पा सकते हैं, न्यायसंगत है। परन्तु इसके बिल्कुल शुरूआती दिनों से ही समालोचकों को उपयोगितावाद के होते हुए भी बड़ी ही दिक्कतों का सामना पड़ा है। इस पृष्ठभूमि में, उपयोगितावाद के विकल्प रूप में, रॉल्स के सिद्धांत का प्रस्ताव किया गया है। रॉल्स की पुस्तक, *थिअरी ऑफ जस्टिस*, इस अवधारणा की एक निर्णायक व्याख्या देती है।

न्याय–संबंधी जॉन रॉल्स के सिद्धांत पर चर्चा करने के लिए, पहले उसके नैतिक समस्याओं पर पहुँचने के तरीके का उल्लेख आवश्यक है, जो कि सामाजिक सिद्धांत की संविदावादी परम्परा में देखा जाता है। परन्तु साथ ही, रॉल्स का सिद्धांत यह आवश्यक बनाता है कि नैतिक विवेचन के निष्कर्ष हमेशा सहज–ज्ञान द्वारा अनुभूत नैतिक धारणाओं के मुकाबले जाँचे व पुनर्व्यवस्थित किए जाएँ, और यह बात संविदावादी परम्परा में उन दूसरे लोगों के

विपरीत है जो यह दावा करते है, कि न्याय के नियम वो होते हैं जिन पर एक परिकल्पित परिवेश में सहमति होती है।

रॉल्स मनुष्य को एक परिकल्पित मूल व्यवस्था में 'अज्ञानता के परदे' के पीछे रखते हैं, जहाँ व्यक्तिजन अपनी आवश्यकताओं, हितों, कौशलों, योग्यताओं संबंधी एवं उन वस्तुओं संबंधी, जो वर्तमान समाजों में विवाद पैदा करती हैं, बुनियादी जानकारी से वंचित रहते हैं। परन्तु उनके पास एक चीज़ ज़रूर होगी, जिसे रॉल्स 'न्याय–बोध' कहते हैं।

इन परिस्थितियों के तहत, रॉल्स का दावा है, लोग शाब्दिक क्रम में न्याय संबंधी दो सिद्धांतों को सहर्ष स्वीकार करेंगे। पहला है 'समानता सिद्धांत', जिसमें हर व्यक्ति को दूसरों की सदृश स्वतंत्रता के अनुरूप ही सर्वाधिक व्यापक स्वतंत्रता का समान अधिकार होगा। यहाँ समान स्वतंत्रता को उदारवादी लोकतांत्रिक शासन–प्रणालियों के सुविदित अधिकारों के रूप में साकार किया जा सकता है। इनमें शामिल हैं – राजनीतिक भागीदारी हेतु समान अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, कानून के समक्ष स्वतंत्रता, इत्यादि। दूसरे सिद्धांत को 'भिन्नता सिद्धांत' कहा जाता है, जिसमें रॉल्स का तर्क है कि असमानताओं को केवल तभी सही ठहराया जा सकता है, यदि उनसे निम्नतम लाभांवितों को लाभ पहुँचता हो।

न्याय–संबंधी जॉन रॉल्स की अवधारणा के दो पहलू हैं। प्रथम, वह एक ''संवैधानिक लोकतंत्र'' की माँग करती है, यानी कानूनों की सरकार और वो ऐसी हो जो वश में हो, जवाबदेह हो और जिम्मेवार हो। दूसरे, वह ''एक निश्चित रीति से'' मुक्त अर्थव्यवस्था के नियमन में विश्वास करती है। ''यदि कानून व सरकार'', रॉल्स लिखते हैं, ''बाज़ार को प्रतिस्पर्धात्मक रखने, संसाधनों को पूरी तरह नियोजित रखने, सम्पत्ति व समर्द्धि व्यापक रूप से समयोपरि वितरित कर देने एवं उचित सामाजिक न्यूनातिन्यून को कायम रखने हेतु प्रभावी रूप से काम करते हैं, तब यदि सभी के लिए शिक्षा द्वारा दायित्व–स्वीकृत अवसर की समानता हो, तो परिणामित वितरण न्यायपूर्ण होगा''।

''पुनर्वितरणवादी'' भी अपनी समालोचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। तदनुसार, म्यैर एफ. प्लैटनर न्याय–संबंधी दृष्टिकोण के खिलाफ़ दो दावे पेश करते हैं। पहला, उनका विश्वास है कि यद्यपि समानता एक स्नेह–पालित मूल्य है, इसे सामर्थ्य की कीमत पर हासिल करना संभव नहीं हो सकता। प्लैटनर के अनुसार, यह समानता बनाम बढ़ी समृद्धि की समस्या रॉल्स को एक परस्पर विरोध में डाल देती है। इस प्रकार, एक ओर रॉल्स ''उनको इस बात को स्वीकार करने से एकदम इंकार करते हैं कि वे जो ज़्यादा आर्थिक योगदान देते हैं, ज़्यादा आर्थिक प्रतिफल का हक रखते हैं''। यद्यपि, दूसरी ओर उनका ''विभिन्नता सिद्धांत'' (जो यह निर्दिष्ट करता है कि ''सामाजिक व आर्थिक असमानताओं को व्यवस्थित किया जाना है, ताकि वे न्यूनतम लाभांवितों के अधिकतम लाभ हेतु हों'') फिर भी दृढ़तापूर्वक कहता है कि उन्हें अधिक आर्थिक पारितोषिक प्रदान करना न्याय–संगत है, जहाँ तक कि वे उन तरीकों से अपने योगदान में वृद्धि करने हेतु प्रोत्साहनों के रूप में काम करते हों जो अन्तोगत्वा अलाभांवितों को लाभ पहुँचाते हों।

दूसरा दावा जो प्लैटनर करते हैं, वो हैं कि पुनर्वितरणवादी चाहता है कि व्यक्ति को उसके ''खरे परिश्रम'' के पारितोषिक से इंकार कर दिया जाए, और उसकी बजाय वह सारे उत्पादन को समग्र समान की ''सार्वजनिक सम्पत्ति'' के रूप में मानते हें। साथ ही, प्लैटनर हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि यह ''निजी सम्पत्ति संबंधी नैतिक आधारों और उसके साथ ही उदारवादी समाज'' को गुप्त रूप से क्षति पहुँचाता है।

बोध प्रश्न 4

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) जॉन रॉल्स के न्याय के सिद्धांत की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.7 न्याय : संयोजन का एक शब्द

शायद न्याय हेतु सबसे अच्छा दृष्टिकोण इसे एक सामंजस्य–संबंधी शब्द के रूप में देखना है। न्याय की समस्या सुलह–संबंधी समस्या है। न्याय का कार्य विभिन्न स्वतंत्रताओं (राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक) का एक दूसरे के साथ तुष्टिकरण; विभिन्न समानताओं (राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक) का एक–दूसरे के साथ और सामान्यतः स्वतंत्रता का उसके सभी रूपों में, मिलाप कराने का काम ही है। संक्षेप में, न्याय का अर्थ है विवादग्रस्त मूल्यों का सामंजस्य और उनको एक साथ किसी साम्यावस्था में रखना।

अनेक जाने–माने लेखकगण स्वतंत्रता बनाम समानता का पक्ष लेना पसंद करते हैं। लॉर्ड ऐक्टन कई साल पहले ही यह स्मरणीय उद्घोषणा कर चुके थे कि ''समानता हेतु सनक ने स्वतंत्रता की आशा को व्यर्थ कर दिया है'' (वह फ्रांसीसी क्रांति के संदर्भ में बोल रहे थे)। ''सिर्फ़ स्वतंत्रता'' के हिमायतियों, उदाहरणार्थ डब्ल्यु.ई. लकी अपनी पुस्तक *डिमोक्रेसी एण्ड लिबर्टी* में, का दावा है कि ''समानता केवल स्वाभाविक विकास के एक कठोर दमन के द्वारा ही मिलती है।''

दरअसल, स्वतंत्रता और समानता दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, जैसा कि कैरिट का कथन है, दोनों ही एक–दूसरे के लिए आवश्यक हैं। यदि समानता है, तो स्वतंत्रता ज़्यादा संतोष प्रदान करेगी। और, साथ ही, यह स्वतंत्रता ही है जो व्यक्ति को समानता की माँग करने के योग्य बनती है। आदमी को आज़ादी दो और वह अभी, नहीं तो बाद में, समानता की माँग करेगा। स्वतंत्रता व समानता के बीच अन्तर्संबंध पर अनेक तरीकों से प्रकाश डाला जा सकता है। बोलने और वोट देने की स्वतंत्रता का ही उदाहरण ले लें, ये दोनों ही धन–संपत्ति के भारी असमान वितरण द्वारा निष्प्रभ किए जा सकते हैं। धनी जन न सिर्फ़ प्रतिस्पर्धा करने बल्कि प्रचार करने हेतु भी एक बेहतर स्थिति में होते हैं। उनके पास प्रचार माध्यमों तक अपेक्षाकृत आसान पहुँच होती है। हैरॉल्ड लास्की के शब्द आज भी सत्य लगते हैं : ''असमानों के समाज में अपनी स्वतंत्रता का दावा करने वाले व्यक्ति के हर प्रयास को ताकतवरों द्वारा चुनौती दी जायेगी।'' संक्षिप्त में, हम पाते हैं कि राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक लोकतंत्र को कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना पड़ता है। और, यदि विभिन्न राजनीतिक मूल्यों पर सूक्ष्म

दृष्टि डालें, तो पायेंगे कि यद्यपि ऊपरी तौर से वे परस्पर विरोधी हो सकती हैं, ध्यापूर्वक देखे जाने पर वे संपूरक एवं अन्तर्सम्बद्ध पायी जाएँगी। बहरहाल, यह न्याय का काम है कि विविध एवं प्रायः–विरोधी मूल्यों के बीच संयोजन या सामंजस्य स्थापित करे। न्याय ही अन्तिम सिद्धांत है, जो स्वतंत्रता के साथ–साथ समानता के भी हित में विभिन्न अधिकारों (राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक) के वितरण को नियंत्रित करता है।

न्याय संबंधी इस प्रकार की अवधारणा एक सामाजिक विचार की विकास–प्रक्रिया के रूप में ऐतिहासिक रूप से विकसित होती है। इस अर्थ में यह एक विकासमान अवधारणा है जो समाज की वास्तविकता एवं अभिलाषा को प्रतिबिम्बित करती है।

20.8 सारांश

हमने जो अब तक देखा वह यह छाप छोड़ता है कि न्याय अनिवार्यतः एक नियामक संकल्पना है, जिसका स्थान अनेक क्षेत्रों में है, जैसे धर्म, नीतिशास्त्र एवं कानून, यद्यपि इसके शाखा–विन्यास में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र आते हैं।

निष्पक्षता न्याय की एक अनिवार्य शर्त है। निष्पक्षता का अर्थ बिना भेदभाव के सबके साथ समान रूप से व्यवहार करना नहीं है। एक व्याख्या है – समानों के साथ समान रूप से और असमानों के साथ असमान रूप से सुलूक करना। परन्तु मुख्य रूप से विभेदीकरण को प्रासंगिक मानदण्डों पर ही रहना पड़ता है।

न्याय चाहता है एक न्यायसंगत आधार पर मूल्यों का विभेदीकरण। विभिन्न सिद्धांत इनकी व्यवस्था का समर्थन अथवा छिद्रान्वेषण करते हैं। सामाजिक न्याय लोगों की आवश्यकताओं पर ज़ोर देता है। वह भारतीय सामाजिक संदर्भ में रियायती नीतियों का भी आह्वान करता है। इसके विपरीत, प्रक्रियात्मक न्याय कानून के शासन और यादृच्छिकता के विलोपन की अपेक्षा रखता है।

न्याय संबंधी रॉल्स के सिद्धांत में लोगों को सामाजिक व्यवस्था संबंधी एक विकल्प चुनना पड़ता है। वे स्वाभावतः एक इच्छास्वातंत्र्यवादी समाज चुनेंगे। यह सिद्धांत सभी को समान मौलिक स्वतंत्रताएँ प्रदान करता है। असमानताएँ सभी के लिए खुले उच्चपदों से जुड़ी होनी चाहिए। उन्हें सबसे अधिक अलाभांवित वर्ग को लाभ पहुँचना चाहिए।

अन्त में, तथापि न्याय संबंधी जटिल संपष्क्तार्थों पर गहरी बहस में पड़ने की बजाय, यह कहना सार्थक होगा कि सभी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मूल्यों का यही संयोजी बन्ध (converting bond) है। उदाहरण के लिए, यदि समानता के मानदण्ड का उल्लंघन किया जाता है, तो स्वतंत्रता कायम नहीं रहेगी और यदि न्याय नहीं होगा तो समानता नहीं रहेगी। स्पष्ट है कि न्याय स्वतंत्रता एवं समानता के मानदण्डों से अभिन्न रूप से जुड़ा है। इसी प्रकार, हम कह सकते हैं कि यदि कोई अधिकार अस्तित्व में नहीं है, तो कोई आज़ादी नहीं रहेगी और यदि न्याय–प्रबन्ध सुनिश्चित करने हेतु कानून की कोई सुसंगठित व्यवस्था नहीं है, तो अधिकारों की कोई रक्षा नहीं होगी। पुनः स्पष्ट है कि न्याय–संबंधी धारणा अनिवार्यतः अधिकारों व कानून की अवधारणाओं से जुड़ी है। इस दशा में सबसे ग़ौरतलब बात यह है कि न्याय–संबंधी धारणा न सिर्फ़ कानून, स्वतंत्रता, समानता व अधिकारों संबंधी मानदण्डों से अभिन्न रूप से जुड़ी है, यह अनिवार्य सम्बन्ध भी स्थापित करती है। न्याय इस अर्थ में राजनीतिक मूल्यों का पुनस्संधिस्थापक और संयोजक है। डैनियल वैब्स्टर ने बिल्कुल ठीक ही कहा कि न्याय ''मनुष्य का प्रधानतम हित है''।

20.9 कुछ उपयोगी संदर्भ

ऐलन, सी.के., *ऐस्पैक्ट्स ऑफ जस्टिस,* स्टीवन एण्ड सन्ज़, लंदन, 1955

बेकर, अर्नेस्ट, *प्रिंसिपॅल्स ऑफ़ सोशल एण्ड पॅलिटिकॅल थिअरी,* लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन, 1967

बैरी, नॉर्मन पी., *एन इण्ट्रोडक्शन टु माडर्न पॅलिटिकॅल थिअरी,* मैकमिलन, लंदन, 1981

राफ़ैल, डी.डी., *प्रॉब्लम्स ऑफ़ पॅलिटिकॅल फ़िलोसॅफ़ी,* मैकमिलन, लंदन, 1976 (द्वितीय संस्करण)

20.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 20.2

2) देखें उपभाग 20.2.2

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 20.3

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 20.4 और उपभाग 20.4.4

बोध प्रश्न 4

1) देखें भाग 20.6